आज के शैक्षिक विमर्श में बालिका या स्त्री शिक्षा के सवाल को समता, न्याय और अवसरों की बराबरी के लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के साथ जोड़कर देखा जाता है। भारत में स्त्री शिक्षा की मुहिम के आरंभ होने के पीछे क्या मकसद था? 'वामा शिक्षक' पुस्तक करीब 125 साल पहले की इस बहस से हमें परिचित करवाती है।

वामा शिक्षक

नीरजा मिश्रा

परिचय

कानोडिया पीजी महिला महाविद्यालय, जयपुर में अंग्रेजी व्याख्याता पद से सेवानिवृत्त। बोध शिक्षा समिति, जयपुर से जुड़ाव। आजकल महिला अध्ययन के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।

पितृसत्तात्मक समाज की दृष्टि व जरूरतों के मुताबिक स्त्रियों को सांचों में गढ़ने व पुनः गढ़ने की प्रक्रिया युगों से चली आ रही है। मुंशी ईश्वरी प्रसाद व मुंशी कल्याण राय द्वारा 1872 में लिखी व 1883 में विद्यादर्पण प्रेस, मेरठ से छपी पुस्तक 'वामा शिक्षक' यह भूमिका इतिहास के ऐसे निर्णायक मोड़ पर अदा करती है जब स्त्री शिक्षा न के बराबर थी। कहा जा सकता है कि उसे लिखने का मुख्य ध्येय स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करना था, जिसकी इच्छा हिन्दुस्तान के तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने प्रकट की थी।

यह उर्दू में मुसलमान स्त्रियों के लिए डिप्टी नज़ीर अहमद द्वारा लिखी पुस्तक 'मिरातुल उरूज़' से प्रेरित थी, जिसे तब एक हजार रुपये के पुरस्कार से नवाजा गया था। नेशनल बुक ट्रस्ट का यह अत्यंत सराहनीय प्रयास है कि उसने 'वामा शिक्षक' के पुनर्मुद्रण से हिन्दुस्तान में महिला शिक्षा व महिला अध्ययन दोनों ही क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। डॉ. गरिमा श्रीवास्तव ने गहन शोध कर पुस्तक की प्रस्तावना में इस उपन्यास को 'कौंडक्ट नॉवल' (Conduct Novel) यानी आचरण संबंधी उपन्यास के सही परिप्रेक्ष्य में परखा है, जो खासतौर से स्त्रियों के आचरण में सुधार लाने के लिए लिखे गए थे और जिनमें हम 19वीं शताब्दी इंग्लैण्ड में भी पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों के लिए बनाए गए आचरण संबंधी कठोर नियम देख सकते हैं। उनमें भी गैर-स्त्रियोचित व्यवहार को अत्यंत हेय दृष्टि से देखा जाता था।

इन उपन्यासों में पहले-पहल रिचर्डसन का 'पैमला' था जो 'वर्चू रिवॉर्डेड' उपशीर्षक के साथ 1740 में प्रकाशित हुआ था। उसमें ऐसी स्त्रियों के लिए आचरण संबंधी सिद्धांत थे जो हमेशा अपनी इज्जत खोने के कगार पर रहती थीं - जिसका संबंध मुख्यतः

लेखक : मुंशी ईश्वरीप्रसाद, मुंशी कल्याण राय
संपादन एवं प्रस्तुति : डॉ. गरिमा श्रीवास्तव
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
मूल्य : 55 रुपए, पृष्ठ-142

कौमार्यभंग होने से था। पैमला एक ऐसी युवा नौकरानी की कहानी है जिसकी गृहस्वामिनी का देहांत हो गया है। मृतका का बेटा पैमला की ओर आकर्षित है और अपनी सामाजिक सत्ता के चलते पैमला की स्थिति का नाजायज फायदा उठाना चाहता है, इसलिए उसका पीछा करता है। वह उसके स्वच्छंद व्यवहार के तौर-तरीकों को ठुकरा देती है और वहां से भागकर अपने-आपको बचाती है। आखिर में, पैमला से प्रेम होने के कारण वह उससे विवाह करना चाहता है। इस तरह, उपन्यास में सदाचार को उसका पुण्यफल प्राप्त होता है। उस समय में युवतियों का विवाह बिना किसी अवरोध के होना अत्यंत आवश्यक था। युवती की आबरू सुरक्षित रहते हुए उसका विवाह होना भवसागर पार करने के समान था। खासतौर पर पैमला जैसी लड़कियों के संदर्भ में। पर, यह समस्या मध्य वर्ग में भी व्याप्त थी।

वे लुइज़ा एम ऐलकॉट के उपन्यास 'लिटिल विमेन' (1868) की युवा महिलाएं हों या जेन ऑस्टेन (1811-1818) के उपन्यास 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस' की नायिकाएं हों, सभी युवा स्त्रियों का उद्देश्य एक अच्छा, सार्थक विवाह था जैसा कि सभी शालीन, शिष्ट युवतियों का ध्येय होना चाहिए था। उस युग में सभी पात्र इसी दिशा में बढ़ते हैं।

जेन ऑस्टेन के उपन्यास 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस' में एक हद दर्जे का अहंकारी व मूर्ख पादरी कौलिंस, बेनेट बहनों को एक आचरण संबंधी किताब (कौंडक्ट बुक) - फॉरडाइस की 'सर्मन्स टू यंग विमेन' में से कुछ अंश पढ़कर सुनाता है। लिडिया की प्रतिक्रिया खौफ से भरी होती है, जब वह कौलिंस को सुन उसे मुंह बाये देखती है। पर उपन्यास में लिडिया ही है जिसकी शादी काफी अजीबोगरीब स्थितियों व तरीकों से तय होती है। इसी प्रकार 'वामा शिक्षक' में भी गंगा को ससुराल जाने से पहले ज्ञानो द्वारा दी गई सलाह भी किसी आचरण संबंधी उपदेश के समांतर ही है। वह कहती है, 'यहां और वहां के रहने में बड़ा अंतर है- सासरे में एक और ही तरह रहना-सहना पड़ेगा। ...बड़ा भारी जीवन तो तुमको वहां तय करना होगा। ...सासरे में जितने लोग होंगे सब तुम्हारे दोष ढूंढ़ेंगे- कोई तुम्हारी चाल को देखेगा कि बहू क्योंकर ऐसे चलती है- कोई तुम्हारे दुपट्टे को देखेगा कि बहू ने क्योंकर आंचल डाला- कितना घूंघट निकाला और उट्ठक बैठक कैसी है - जब खाना खाओगी तब सब तुम्हारे मुंह को ताकेंगी कि कितना मुंह खोला और कितना बड़ा गस्सा खाया, सो इन बातों का ध्यान रखना- जहां बैठो नीची नजर किए हुए बैठी रहना- अपने-आपसे खाने को न मांगना और जब कोई रोटी व किसी और वस्तु के खाने को कहे तो उस्के खाने में इतना हठ न करना जिस्से वह अप्रसन्न हो जावे (पृष्ठ 48-49, वामा शिक्षक)। पुस्तक का आखिरी भाग जो 'शिक्षा' शीर्षक के तहत लिखा गया है, उपन्यास से प्राप्त शिक्षा पर आधारित उपदेश ही है।

1857 की क्रांति के बाद सर सैयद अहमद खान जिन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (उस समय मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियेण्टल कॉलेज) की स्थापना 1875 में की थी, संयुक्त प्रांत (यूनाइटेड प्रॉविन्सेज़) में बहुत सक्रिय हो गए क्योंकि उन्हें मुसलमानों के राजनीतिक भविष्य की चिंता थी और उन्होंने मुसलमानों की स्थिति पुख्ता करने के लिए शिक्षा को प्रोत्साहित किया। इस समूचे सरोकार का एक हिस्सा था स्त्री शिक्षा। जिस उदारवादी आंदोलन की पहल उन्होंने की थी उसके दूरगामी परिणाम हुए। 1870 में सर सैयद ने दरअसल मोहम्मडन एजुकेशनल कौंफ्रेंस का आयोजन किया जिसमें उनके बहुत से पुरुष अनुयायी ही आए। इन्हीं अनुयायियों ने स्त्री शिक्षा का काम हाथ में लिया और बालिकाओं के लिए विद्यालयों की वकालत की, शिक्षिका-प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की और स्त्रियों के लिए पहली बार पत्रिका प्रकाशित की। इन सब उर्दू पत्रिकाओं में सबसे पहले 'खातून' (अलीगढ़) 'पर्दानशीन' (आगरा), 'इस्मत' (दिल्ली), 'तहज़ीबन निस्वान' (लाहौर) छपीं। इसी दौरान हिन्दी की कई पत्रिकाओं ने एक पाठक व लेखक वर्ग की रचना की। हिन्दी में हेमंत कुमारी देवी द्वारा संपादित 'सुगृहणी' (1888) व 'सरस्वती' पत्रिकाएं भी (1900) थीं और बांग्ला पत्रिकाओं में प्रमुख थी 'भारती' (185-1905) जिसका संपादन स्वर्ण कुमारी देवी ने किया था। इसी वातावरण में 'मिरातुल उरूज़' और उसकी समकक्षीय 'वामा शिक्षक' हिन्दू स्त्रियों के लिए लिखी गई थी।

यह वही समय है जब ज्योतिबा फुले ने महाराष्ट्र में और दयानन्द सरस्वती ने पंजाब में स्त्री शिक्षा की मुहिम छेड़ी। स्त्री शिक्षा एक बड़े आंदोलन का हिस्सा था जो आधुनिकता की ओर लक्षित था क्योंकि ज्यादातर समाज सुधारकों के विचार में स्त्रियों की शिक्षा उन्हें पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त पुरुषों की बेहतर साथी/सहधर्मिणी बनाने की दृष्टि से जरूरी थी। यदि बंगाल के संदर्भ में देखें तो कहा जा सकता है कि 'भद्रलोक' के लिए 'भद्र महिला' की दरकार थी। क्योंकि, उन्हें औपचारिक शिक्षा के पहले भी, घर में ही एक 'भद्र' पुरुष का निर्माण करना था। पर इस सबसे पहले एक नए वैवाहिक संबंध का निर्माण जरूरी था, जिसमें पुरुष का विकास माधुर्य भरे घरेलूपन (Sweet Domesticity) के आधार पर हो सके और जिसके लिए एक सुसंस्कृत, मोहक व्यवहार वाली पत्नी- यानी एक शिक्षित स्त्री की आवश्यकता थी। पर, इस प्रक्रिया के तहत पुरुष का वर्चस्व व स्थायित्व ज्यों का त्यों रहना था, उसमें कोई छेड़खानी या दखल नहीं होनी थी। दरअसल, स्त्रियों की आंतरिक दुनिया और घरेलू जीवन में कोई छेड़छाड़ नहीं होनी थी। नतीजतन, 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के शुरुआती दौर में राष्ट्रीय संस्कृति के आध्यात्मिक मूलाधार को सुरक्षित रखने और सुदृढ़ करने के भौतिक संदर्भ में ही पाश्चात्य आधुनिकता वांछनीय थी, चूंकि आध्यात्मिक मूलाधार घर में, स्त्रियों की आंतरिक दुनिया और परंपराओं में अवस्थित था। स्त्रियां इस पारंपरिक मूलाधार की प्रतीक थीं और इसका निर्वाह करने वाली भी वही थीं। 'वामा शिक्षक' पूरी तरह इसे अभिव्यक्त करता है। वह पितृसत्तात्मक विचारधारा के अनुसार पारंपरिक भी है और आधुनिक भी। परिवर्तन के इस समय में इस उपन्यास ने एक तरफ राष्ट्रीय एजेंडा में एक जरूरत की पूर्ति की पर जैसा कि प्रस्तावना हमें बताती है दूसरी तरफ वह गवर्नर जनरल की इच्छा के मद्देनजर लिखा गया था।

हिन्दुस्तान के किसी भी समाज सुधार आंदोलन के विश्लेषण में हमारा ध्यान हमेशा जेंडर (स्त्री-पुरुष) संबंधों की ऐतिहासिक विशिष्टता और स्त्री-स्वातंत्र्य और उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियों से जुड़े विमर्श की ओर आकर्षित होता है। बहुत से पुरुष समाज सुधारकों ने पाया कि उनका कार्य राष्ट्रवाद व आधुनिकता के व्यापक सामाजिक व राजनीतिक मुद्दों से जुड़ा है अथवा उनसे शुरू होता है। इसलिए, वे स्त्रियों के समर्थन में बोले, पर यह समझे बगैर कि स्त्रियां स्वयं क्या कहना चाहती थीं। यहां सुधार के इन प्रयासों में कोई कमी देखने या उनकी निंदा करने की दृष्टि नहीं है बल्कि कोशिश इस तथ्य की ओर इशारा करना है कि जेंडर संबंधों को समय व स्थान में अवस्थित होना चाहिए। उन्हें सिर्फ आजादी व स्वायत्ता दर्शाने वाले स्वच्छंद संकेत मात्र नहीं होना चाहिए।

'वामा शिक्षक' एक रोचक और दुर्लभ खजाना है। वह शुरुआती हिन्दी उपन्यास और प्रेमचंद से पहले के समय पर भी रोशनी डालता है और उसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। प्रेस के प्रादुर्भाव और प्रकाशन के विस्तार ने हिन्दुस्तान में उपन्यास को बढ़ावा दिया। 'वामा शिक्षक' से पहले तीन उपन्यास हैं - पंडित गौरी दत्त का 'देवरानी-जेठानी की कहानी' (1870) जो लड़कियों के लिए उपयोगी पुस्तक के तौर पर सरकारी सहायता से लिखा और प्रकाशित किया गया। इसलिए स्पष्ट तौर पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 1870 से सरकार ने बालिका शिक्षा के मुद्दे को गंभीरता से लिया था। हिन्दी साहित्य में उपन्यास शब्द तब तक प्रकट नहीं हुआ था। 1877 में 'भाग्यवती' में किस्सागोई का पुट मौजूद है जिसके बाद 1882 में 'परीक्षा गुरु' लिखा गया। 1883 में 'वामा शिक्षक' का प्रकाशन एक अत्यंत नाजुक बिन्दु पर होता है जब हिन्दी उपन्यास विकसित हो रहा था। स्त्री, राष्ट्र, राष्ट्रवाद न सिर्फ एक-दूसरे से गुंथे हुए विषय थे वरन् हिन्दुस्तान के पुनरुत्थान के अहम् मुद्दे थे। कालीघाट चित्रों में बड़े तौर पर देखा गया कि स्त्रियां भी पुस्तकों की घोर-गंभीर पाठक बन गई हैं - उनमें भद्र महिला को बिना बांहों का ब्लाउज पहने पूर्ण तन्मयता से उपन्यास पढ़ते हुए दर्शाया गया है जो इस बात की लगभग एक आलोचनात्मक तस्वीर है कि स्त्रियां अब अपने घर-परिवार के दायित्वों की उपेक्षा कर रही हैं। महिला संगठनों और आंदोलनों की गैर-मौजूदगी जाहिर करती है कि स्त्रियां विमर्श/विवाद का लक्ष्य थीं पर खुद के इतिहास का विषय नहीं। साहित्य इस तरह की महिला को चित्रित करने का एक अहम् औजार रहा जो समकालीन पितृसत्ता की जरूरतों के अनुसार ढल जाए।

'वामा शिक्षक' में शिक्षा निम्न जाति की स्त्रियों की जरूरतों को ध्यान में नहीं रखती। कहानी लाला भगवानदास जिनके

पास ढाई गांव की जमींदारी है, उनके दो लड़कों व चार पोतियों के बारे में है। तीन स्तरों पर उभरते स्याह और सफेद चरित्र बेहद सफाई से 'बुरे' और 'अच्छे' की श्रेणियों में सांचाबद्ध हो जाते हैं और स्त्रियों पर सख्त नियंत्रण बरतते हुए, उन्हें 'अच्छे' की श्रेणी के सख्त सांचे में ढलने को बाध्य करते हैं। किसी किस्म का परिवर्तन उन्हें तुरंत 'बुरे' की श्रेणी में पहुंचा देता है। शिक्षा के लाभ रेखांकित करने के लिए दोनों भाइयों जमुनादास और मथुरादास की बातचीत को संवाद के रूप में रखा गया है ताकि आधारभूत मुद्दे पर 'फोकस' बना रहे और शिक्षा संबंधी पूर्वग्रह और उसके लाभ जाहिर हों। मथुरादास की पत्नी और उनकी दो बेटियां आदर्श स्त्रियों के तौर पर पाठकों के सामने प्रस्तुत की गई हैं।

स्त्रियों को अपने घरों की चारदीवारी में रहना चाहिए, सुघड़ गृहणियां बनना चाहिए, घर का किफायती अर्थ प्रबंधन, चाक-चौबंद हिसाब रखना आना चाहिए, पति की अपेक्षा पर खरा उतरना चाहिए, शालीन, विनीत होना चाहिए, पाक कला और सिलाई-कढ़ाई में निपुण होना चाहिए। जो स्त्रियां राधा की भांति अपने बूते पर काम करती हैं, वे तकलीफ पाती हैं या फिर मुगलानी की तरह बेईमानी करने वाली होती हैं। विधवा बहिन किशोरी जो मेहनती है पर घर ही में रहकर अपने बेटे के व्यवसाय में इजाफा करती है, विधवाओं के लिए आदर्श है। विधवा ज्ञानो एक भली स्त्री है जो अपनी आजीविका शिक्षिका के बतौर अच्छी और सही बातें पढ़ाकर कमाती हैं। समता व स्वतंत्रता की बात कहीं नहीं आती। संयुक्त प्रांत में भद्र महिला अभी घर की दहलीज पार नहीं कर रही है। लेखक पुरुष हैं पर बहुत तरीके से उन्होंने स्त्री पात्रों को एक-दूसरे से संवाद करने के लिए इस्तेमाल किया है।

हमारे सामने 'शिक्षक' की कैसी तस्वीर उभरती है? क्या वह एक भविष्योन्मुखी, प्रगतिवादी दृष्टिकोण है? अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि वह एक बेहद सीमित दृष्टिकोण है। जैसाकि पहले ही विस्तार से कहा गया है, माधुर्यपूर्ण घरेलूपन की स्थिति को बदला या छोड़ा नहीं जाना था। पुरुष वहीं हैं, जहां वे थे। पुरुषों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना था। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के नाम पर उनके लिए परिदृश्य और सुविधाजनक, बेहतर दर्शनीय हो गया। एक तरह से स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने के नाम पर ये शिक्षक हतोत्साह व निराशा के प्रतीक थे। स्त्रियां विवाहित हों अथवा विधवा, वे सारे वक्त घर-परिवार के काम-काज करने में संलग्न रहतीं, घर से बाहर नहीं निकलतीं और इसी स्थिति में गर्व महसूस करतीं। उदाहरण के लिए, गंगा व किशोरी की मां। हमें कहानी में ज्ञानो नजर आती है जो लेखकों के अनुसार एक नैतिक, कुशल व उदाहरणीय शिक्षिका है। एक पितृसत्तात्मक समाज में जहां सती प्रथा का प्रचलन था, एक विधवा जो कि स्वनिर्भर थी, एक कमजोर कड़ी थी। विधवाओं के लिए व्यवहार के तौर-तरीके ज्यादा सख्त थे, इसलिए ज्ञानो दस-बारह रुपये की सरकारी नौकरी को ठुकरा शालीन परिवारों में लड़कियों को पढ़ाना पसंद करती है और अपना समय धार्मिक कार्यों में व्यतीत करना चाहती है, जैसा कि विधवाओं से उम्मीद की जाती थी। सम्मानीय स्थिति की तलाश में, वह छह-आठ रुपये की गंगा व किशोरी को पढ़ाने की नौकरी से खुश है। यह तथ्य हमारे सामने एक अहम् सवाल उठाता है, वह है लड़कियों को दी जाने वाली सलाह का। ज्यादातर घर-परिवार व शिक्षक अभी भी यानी 125 साल बाद भी वही प्रारूप लड़कियों के सामने रखना चाहते हैं। यह एक भयावह सच्चाई है कि हिंदुस्तान के दूर-दराज इलाकों, छोटे शहरों और कई बार बड़े शहरों में भी शिक्षक अभी भी ज्ञानो की जबान में बात करते हैं। आजादी के 65 साल बाद भी, जब कई सरकारों ने इस मुद्दे के प्रति गहरा सरोकार व्यक्त किया है, वस्तुस्थिति में बदलाव बहुत कम आया है। शिक्षक व बालिकाएं अभी भी ज्ञानो, गंगा व किशोरी की व्यूह रचना में फंसे हुए हैं।

निश्चय ही यह उपन्यास एक नई शुरुआत की ओर इंगित करता है हालांकि स्त्रियां पितृसत्ता की जरूरतों के अनुसार रची गई हैं। पितृसत्ताएं अभी भी बन रही हैं और इस प्रक्रिया में कोई विशेष बदलाव गौर नहीं किया जा सकता। स्त्रियों की छवियां पितृसत्ता की उपज हैं जिन्हें पितृसत्ता बार-बार पुनर्परिभाषित करती है।

उपन्यास के 136 वर्ष बाद पुनर्प्रकाशन से एक ऐसा वक्त जीवंत हो उठा है जिसकी चर्चा महिला अध्ययन में ज्यादा नहीं हुई है और इसलिए इसका अनुवाद विशेष मायने रखेगा। ◆